

रसवद् अलङ्कार

सुचित्रा भारती

कूटशब्द रसवद अलंकार, दण्डी, मम्मट, आनन्दवर्द्धन।

प्रस्तुत शोध पत्र में रसवद् अलङ्कार के विषय में वर्णन किया गया है तथा यह प्रदर्शित किया गया है कि अलङ्कारवादियों के दृष्टिकोण में 'रसवद् अलङ्कार' की स्थिति क्या थी? ध्वनिवादी युग में किस प्रकार आनन्दवर्द्धन, विश्वनाथ आदि ने रसवद् अलङ्कार को अलग दृष्टिकोण प्रदान किया तथा रस को अलङ्कारवादियों के अदृश 'रसवत् अलङ्कार' के अन्तर्भूत नहीं माना। इसी क्रम में धनिक तथा भोज के मत को भी प्रस्तुत किया है जिनका 'रसवत्' विषयक दृष्टिकोण पूर्ववर्ती आचार्यों से भिन्न है।

रसवद् अलङ्कार की उद्भावना अलङ्कारवादी आचार्यों ने की है। काव्यलङ्कार के रचयिता 'भामह' ने शब्दार्थ के साहित्य को काव्य का लक्षण मानते हुए अलङ्कार को उसका प्राण-तत्त्व माना है। रस का अन्तर्भाव भामह ने अलङ्कार के अन्तर्गत ही किया है। तथा रसवत् अलङ्कार के अन्तर्गत सभी रसों की स्थिति मानी जाती है। रसवत् के विषय में कहते हैं-

'रसवद्दर्शितस्पष्टशृङ्गारादिरसं यथा।

देवी समागमद् धर्ममस्करण्यतिरोहिता ॥'¹

अर्थात्, जहाँ शृङ्गारादि रस स्पष्ट रूप से उद्दीप हो रहे हों वहाँ रसवत् अलङ्कार होता है। यथा-धर्मदण्ड धारण किए हुए देवी, प्रकट रूप में उपस्थित हो गयी। समीक्ष्य उदाहरण में केवल विभाव का ही वर्णन है जहाँ देवी आलम्बन विभाव है। यहाँ यह भी स्पष्ट नहीं होता कि यह शृङ्गार का उदाहरण है अथवा किसी अन्य का क्योंकि धर्मदण्ड का वर्णन शृङ्गार का उदाहरण है अथवा किसी अन्य का क्योंकि धर्मदण्ड का वर्णन शृङ्गार के अनुकूल प्रती नहीं होता। यहाँ रस के प्रति भामह की उदासीनता प्रकट होती है।

'दण्डी' भी विशुद्ध रूप से अलङ्कारवादी सम्प्रदाय के परमपोषक आचार्य हैं। इन्होंने भी रस का रसवद् अलङ्कार के अन्तर्गत वर्णन किया है। 'भामह' ने रसवद् अलङ्कार के विषय में केवल शृङ्गार रस का उदाहरण दिया है, वहीं दण्डी ने आठ रसों का वर्णन किया है।

शृङ्गारमूलक रसवद् का उदाहरण है-

‘मृतेति प्रेत्य सङ्गन्तुं यया में मरणं मतम् ।²

सैवावन्ती मया लब्धा कथमत्रैव जन्मनि ॥

‘दण्डी’ कहते हैं समीक्ष्य उदाहरण में रसवद् अलङ्कार के प्रसङ्ग में रति विभावादि से परिपुष्ट होकर शृङ्गार रस में परिणत हो गया।

‘प्राक्प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः शृङ्गारतां गता ।³

रूपबाहुल्योगेन तदिदं रसवद्वचः ॥’

इस प्रकार ‘दण्डी’ ने भी ‘भामह’ के मत को स्वीकार कर रसपेशल वाक्य को रसवत् अलङ्कार स्वीकार किया है-‘रसवद्रसपेशलम्’⁴

‘उद्भट’ ने रसवत् अलङ्कार के प्रसङ्ग में ‘भामह’ के ही लक्षण का अक्षरक्षः अनुकरण करते हुए उसको अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है तथा रस के अवयव-भूत पाँच साधनों की ओर भी निर्देश किया है।

‘रसवद्दर्शितस्पष्ट-शृङ्गारादिरसादयम् ।⁵

स्वशब्दस्थायिसंचारिविभावाभिनयास्पदम् ॥’

अर्थात्, स्वशब्द, स्थायी, संचारी, विभाव और अनुभाव के द्वारा जहाँ रस का उदय स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जाता है वहाँ ‘रसवत्’ अलङ्कार होता है।

‘उद्भट’ के मत में शृङ्गार आदि 9 रसों के परिपोष होने पर काव्य ‘रसवत् अलंकार’ कहलाता है। उद्भट ने भी भामह आदि अलङ्कारवादियों की भाँति काव्य का प्राण अलंकार ही माना है एवं रस उसी का अङ्गभूत होकर काव्य का उत्कर्ष करता है।

रसवत् अलङ्कार के प्रसङ्ग में ध्वनिवादी आचार्य अलङ्कारवादी आचार्यों से भिन्न मत रखते हैं। आचार्य ‘आनन्दवर्धन’ की दृष्टि में पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित रसवत् आदि अलंकारों की संज्ञा रसादि की अप्रधानता में ही संभव है, प्रधानता में नहीं-

‘प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गन्तु रसादयः ।⁶

काव्ये तस्मिन्नलङ्कारो रसादिरिति में मतिः ॥’

‘आनन्दवर्धन’ का मत है कि अलंकार पद का अर्थ दूसरे की शोभा बढ़ाना है। जब रसादि प्रधान रूप से व्यङ्ग्य होंगे तो उनके अङ्गी होने से अन्य तत्त्व ही उनकी शोभा में उत्कर्ष का आधान करेंगे, क्योंकि वे अलंकार्य हो जाएंगे। ऐसी स्थिति में उन्हें अलंकार नहीं कह सकते। रूपक, दीपक,

उपमा आदि को अलंकार नहीं कह सकते। रूपक, दीपक, उपमा आदि को अलंकार इसलिए कहते हैं कि वे काव्य में निरूपित रसादि तत्त्वों की शोभा में उत्कर्ष का आधान करते हैं। ध्वन्यालोककार कहते हैं-

‘रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्।’⁷

अलङ्कृतीनां सर्वासामलङ्कारत्वसाधनम्।।’

तात्पर्य यह है कि जहाँ रसादि प्राधान्येन अभिव्यक्त है, वहाँ अन्य वस्तु के अङ्ग रूप में होने से रसवत् अलङ्कार न होकर वह केवल ध्वनि का विषय है, उपमादि वहाँ अलङ्कार होंगे। परन्तु जहाँ अन्य वस्तु या अलङ्कार का चमत्कारातिशय प्रयोजकता हो और रसादि के द्वारा-चारुत्व की निष्पत्ति की जाये वह रसवदादि अलङ्कार का विषय है। इसलिए जहाँ पर काव्य के मुख्य प्रतिपाद्य रसादि ही हों वे रसवत् अलङ्कार नहीं हो सकते।

‘विश्वनाथ’ के अनुसार रस और भाव, रसाभास और भावभास एवं भाव का प्रशम ये जब किसी के अङ्ग हो तो रसवत् अलङ्कार होता है।⁸

‘मम्मट’ ने ‘रसवद् अलङ्कार’ का उल्लेख यद्यपि नहीं किया है तथापि उनके कथन से यह प्रतीत होता है कि उनके अनुसार कहीं मुख्य रस के रहते हुए भी इन भावशान्ति आदि की प्रधानता हो जाती है। उस दशा में ये ‘रसवदलङ्कार’ कहलाते हैं।

‘मुख्ये रसेऽपि तेऽङ्गित्वं प्राप्नुवन्ति कदाचन’⁹

स्पष्ट है मम्मट, विश्वनाथ, आनन्दवर्धन प्रभृति सभी ध्वनिवादी आचार्यों ने रस को रसवत् अलंकार में परिगणित कर निरूपित करने की आवश्यकता नहीं समझी। इन्होंने रस की अलंकार्यता को सिद्ध किया है।

आचार्य ‘कुन्तक’ ने भी रस के विषय में भामह, दण्डी तथा उद्भट की परम्परा का त्याग किया है। ये रसवत् अलङ्कार का निषेध करते हैं-

अलंकारों न रसवत् परस्याप्रतिभासनात्।¹⁰

स्वरुपातिरिक्तस्य शब्दार्थसंगतेरपि।।

अर्थात् रसवत् अलंकार नहीं है और इसके कारण दो हैं-एक अपने स्वरुप के अतिरिक्त इसमें अलंकार्य रूप से किसी अन्य की प्रीति नहीं होती और दूसरे अलंकार्य रस के साथ अलंकार शब्द का प्रयोग होने से शब्द और अर्थ की संगति नहीं बैठती।

पुनः रसवत् के परम्परागत रूप का खण्डन करने के उपरान्त कुन्तक स्वमत को स्पष्ट करते हैं तथा रसवत् अलंकार के वास्तविक स्वरुप का विवेचन करते हैं-

रस तत्त्व के विधान से, महदयों के लिए आह्लादकारी होने के कारण, जो अलंकार रस के समान हो जाता है, वह अलंकार रसवत् कहा जा सकता है।

दशरूपक के वृत्तिकार 'धनिक' ने रसवत् अलंकार का वर्णन नहीं किया है परन्तु 'रसवत्' शब्द का प्रयोग काव्य के पर्याय के रूप में करते हैं। वृत्तिकार धनिक के अनुसार रस मुख्य रूप से प्रेक्षक या रसिक के हृदय में वर्तमान रहता है किन्तु जैसे 'आयुर्घृतम्' उदाहरण में घी पर आयु का लक्षणा से आक्षेप होता है, उसी प्रकार काव्य को 'रसवत्' कहा जाता है क्योंकि सामाजिक के हृदय में काव्य ही रस को आस्वाद्य बनाता है। इस प्रकार अलौकिक-आनन्द, चेतना को प्रकट करने के कारण, उसके हेतु होने से, श्रव्य या दृश्य काव्य रसवत् कहलाता है।

'तेन रसिकाः सामाजिकाः, काव्यं तु तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुभावेन रसवत् आयुर्घृतमित्यादिव्यपदेशवत्।'¹¹

आचार्य 'भोज' ने भी धनिक के सदृश काव्य को रसवत् कहा है तथा तर्क-पूर्वक सिद्धि भी की है। भोज पहले निराकरण करते हैं तदुपरान्त तर्क द्वारा स्वमत की उपस्थापना करते हैं। 'भोजराज' ने श्रृङ्गारप्रकाश में कहा है कि रस शब्द में निन्दा, प्रशंसा, आदि अर्थों में 'मतुप्' प्रत्यय नहीं माना जा सकता, क्योंकि सुख-दुःखावस्थारूप रस चैतन्य वाले मनुष्य में ही हो सकता है न कि शब्दार्थ रूप अचेतन काव्य में। इसी तरह 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः', अथवा 'तत्र तस्येव' इन सूत्रों से 'वति' प्रत्यय भी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि अचेतन काव्य सहृदय में विद्यमान रस के तुल्य नहीं हो सकता है। यहाँ भोज ने 'रसवत्' के स्पष्टीकरण के लिए प्रकृति-प्रत्यय का प्रयोग किया है।

'भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशयने।

संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥

यदि मत्वर्थीयः, मत्वर्थानुपपत्तेस्तदभावः। रसाः हि

सुखदुःखावस्थारूपाः। ते च शरीरिणां चैतन्यवताम्, न काव्यस्य,

तस्य शब्दार्थरूपतया अचेतनत्वेन भूमनिन्दादीनामभावात्।'¹²

'अथ वतिः, वत्यर्थानुपपत्तेस्तदभावः। 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः',

'तत्र तस्येव'। न च रसैस्तुल्यं वर्तत इति रसवत्।'¹³

शङ्का के उपरान्त इसका समाधान करते हुए भोजराज कहते हैं-रसवत् में मत्वर्थीय प्रत्यय भी माना जा सकता है, क्योंकि रसवान् राम आदि के वचन मूलक होने के कारण कवि का काव्य

भी रसवत् है और उसके साथ अभेदारोप से कवि के द्वारा अनुकार्य रामादि के वचन का अनुकरण भी रसवत् होता है।¹⁴ अर्थात्, रसवान् रामादि के भावों का वर्णन करने वाला कवि भी स्वयं रसिक ही होता है और यदि कवि रसिक या शृङ्गारी होता है तो काव्य में सब कुछ रसमय हो जाता है अथवा 'रसवत्' शब्द में 'तदर्हम्' इस सूत्र से वति प्रत्यय भी माना जा सकता है। रसों के प्रतिपादन करने में जो समर्थ होता है वह रसवत् कहलाता है। अनुक्रियमाण रामादि के रसवत् वचन, जब कवि के वर्णन के साथ अभिन्न जैसे प्रतीत होते हैं तो रसों के प्रतिपादन में समर्थ होते हैं और रसवत् कहलाते हैं।

'तदर्हम्' इति वचनाद् वतिर्भविष्यति। रसान् प्रतिपादयितुं यदर्हति तद् रसवत्। अर्हति च रसवद् रामादिवचनमनुक्रियमाणममेदसमध्यारोपाद् रसान् प्रतिपादयितुमिति रसवद् भवति'¹⁵

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि अलङ्कारवादी आचार्य अलङ्कार को ही प्राण-तत्त्व मानते हैं तथा रस-भावादि का वर्णन रसवदादि अलङ्कार के अन्तर्गत ही करते हैं। वहीं ध्वनिवादी आचार्य के अनुसार रस को रसवद् अलङ्कार के अन्तर्गत नहीं रख सकते क्योंकि जहाँ रसादि प्रधानतया निरूपित हों वहाँ वे ध्वनि की संज्ञा प्राप्त करते हैं, जहाँ उनकी प्रधानता नहीं होती वहाँ इन्हें गुणीभूतव्यङ्ग्य कहा जाता है। अलंकार तो काव्य की तृतीय कोटी है जिन्हें ध्वनिवादी आचार्य चित्र-काव्य कहते हैं। रसादि उस कोटि को इसलिए प्राप्त नहीं हो सकते क्योंकि चित्र-काव्य सर्वथा व्यङ्ग्यरहित हुआ करता है और रसादि केवल व्यङ्ग्य ही होते हैं। इसलिए ध्वनिवादियों ने अलङ्कारवादियों के मत का खण्डन करते हुए अङ्गी रस को रसवत् अलङ्कार से भिन्न माना है। रसवत् अलङ्कार विषयक ऊहापोह के क्रम में धनिक और भोजराज के 'रसवत्' विषयक मत का भी ज्ञान होता है जिन्होंने 'रसवत् अलङ्कार' का वर्णन नहीं किया है अपितु 'रसवत्' को अलङ्कार के क्षेत्र से बाहर कर केवल रसवत् का वर्णन किया है। इनके अनुसार श्रव्य या दृश्य को रसवत् कह सकते हैं।

अन्तटिप्पणी

1. काव्यालङ्कार, 3/6, पृ. 68
2. काव्यादर्श, 2/280, पृ. 183
3. वही, 2/281, पृ. 183
4. वही, 2/275, पृ. 180
5. काव्यालङ्कारसारसंग्रह, 4/3, पृ. 354

6. ध्वन्यालोक, 2/5, पृ. 201
7. वही, द्वितीय उद्योत, पृ. 208
8. साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, पृ. 366
9. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, सू.-51, पृ. 146
10. वक्रोक्तिजीवित, 3.11, पृ. 105
11. दशरूपक, चतुर्थ प्रकाश, पृ. 182
12. शृङ्गारप्रकाश, एकादश प्रकाश, पृ. 626
13. वही, पृ. 627
14. रसवतो रामादेर्यद् वचनं तद् रसमूलत्वाद् रसवत्, अभेदसमध्यारोपाच्च कविता अनुक्रियमाणस्य तस्य अनुकरणमपि रसवत्, वही, पृ. 627
15. वही, एकादश प्रकाश, पृ. 627

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. काव्यप्रकाशः मम्मट, (सम्पा. एवं व्या.), विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1960
2. काव्यादर्श : दण्डी, (सम्पा. एवं व्या.), रामचन्द्र मिश्र, विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1958
3. काव्यलङ्कार : भामह, (सम्पा. एवं व्या.), देवेन्द्र नाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 2019 विक्रमाब्द
4. काव्यलङ्कारसारसंग्रहः उद्भट, (सम्पा. एवं व्या.), राममूर्ति पाठक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयगा, 1966
5. दशरूपकः धनञ्जय, (सम्पा. एवं व्या.), श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1999
6. ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन, (सम्पा. एवं अनु.), जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1965
7. शृङ्गारप्रकाशः भोज, (सम्पा.), रेखाप्रसाद द्विवेदी, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र एवं कालिदास संस्थान, 2007
8. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ, (सम्पा. एवं व्या.) शालिग्रामशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।